DSSSB TGT & PGT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
भाषा विज्ञान का परिचय
LIVE 10-04-2024 04:00 PM

भाषा - विज्ञान

- मौखिक
- लिखित
- सांकेतिक

भाषा की उत्पत्ति

भाषा उत्पत्ति के लिए दो बातें अनिवार्य हैं

1. वाग्यन्त्र से ध्वनि या वर्णोच्चारण की क्षमता प्राप्त करना।
2. उच्चरित ध्वनि का, अर्थ के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रारम्भ।

- प्रथम बात प्रायः सभी पशु-पक्षियों एवं अन्य जीवों में प्राप्त होती है।
- पशु-पक्षियों में स्पष्ट उच्चारण या व्यक्त वाक् का अभाव है,अतः वे स्पष्ट रूप से बोलने में असमर्थ हैं।
- मनुष्य को बोलने की क्षमता जन्म से प्राप्त है, अतः वह जन्म से वाग्यन्त्र या वागिन्द्रिय का प्रयोग करता है।
- भाषा-उत्पत्ति विषयक समस्त सिद्धान्त अनुमान पर आश्रित हैं एवं विज्ञान अनुमान पर आश्रित न होकर तथ्यों पर निर्भर होता है।

सामान्य लोकप्रियता का विषय होने से इसके प्रस्तावित सिद्धान्तों का वर्णन किया जा रहा है-

1. दिव्योत्पत्ति-सिद्धान्त

- यह सबसे प्राचीन मत है। इसके अनुसार जिस प्रकार परमात्मा ने मानव सृष्टि की, उसी प्रकार मानव के लिए एक परिष्कृत भाषा भी दी।
- दैवीय शक्ति ही इस सिद्धान्त का मूल है। उसी दैवी शक्ति ने ही सृष्टि के प्रारम्भ में ही वेदों का ज्ञान दिया, जिससे मानव अपना क्रिया-कलाप चला सका।
- वेदों, उपनिषदों तथा अनेक दर्शन ग्रन्थों में यह बात प्रमाणित है कि ईश्वर से ही वेदों की उत्पत्ति हुई।

समीक्षा- इस सिद्धान्त पर निम्न आपत्तियों की गयी हैं।

1. यह सिद्धान्त तर्क या विज्ञान संगत नहीं है, केवल आस्था पर निर्भर है।

2. यदि भाषा ईश्वर-प्रदत्त होती तो सृष्टि में भाषा भेद नहीं होता।

3. जर्मन् विद्वान् हर्डर ने लिखा है कि "यदि भाषा ईश्वरकृत होती तो यह अधिक सुव्यवस्थित और तर्कसंगत होती, अधिकांश भाषाएं अव्यवस्थित और त्रुटिपूर्ण हैं।"

2. सङ्केत-सिद्धान्त

- इसे निर्णयवाद, निर्णयसिद्धान्त तथा स्वीकारवाद आदि अनेक नामों से जाना जाता है।
- इस सिद्धान्त के प्रवर्तक 18वीं शताब्दी के फ्रेंच विद्वान् 'रूसो' है।
- इनके अनुसार 'व्यक्ति प्रारम्भ में सङ्केतों के माध्यम से अपना अभिप्राय व्यक्त करता था तथा बाद में सामूहिक रूप से वस्तुओं की संज्ञा दी गयी।'
- इसे 'सामाजिक-समझौता' कहा जा सकता है।

समीक्षा- इस सिद्धान्त की कुछ न्यूनताएं हैं-

1. बिना भाषा के समभा का आयोजन और विचार-विनिमय कैसे हुआ?

2. सङ्केत शब्दों के निर्माण के लिए क्या आधार था? किसी व्यक्ति का सुझाव मान लिया गया या फिर सबके अलग-अलग मत थे?

3. यदि भाषा के बिना सभा का आयोजन, सङ्केत निर्माण एवं सङ्केतों की सामाजिक सम्पुष्टि हो सकती है, तो भाषा की क्या आवश्यकता रह जाती है। अतः यह सिद्धान्त मान्य नहीं है।

3. रणन-सिद्धान्त

- इस सिद्धान्त को धातु-सिद्धान्त, अनुकरण-सिद्धान्त, अनुरणनमूलकतावाद, अनुरणात्मक अनुकरण, डिंग- डांगवाद आदि नामों से निर्दिष्ट किया गया है।
- इस सिद्धान्त के मूल प्रवर्तक 'प्लेटो' थे तथा इसको 'हेस' और 'मैक्समूलर' ने व्यवस्थित किया।
- इस मत के अनुसार 'प्रकृति में एक सामान्य नियम है किसी वस्तु पर चोट मारने पर एक विशेष ध्वनि होती है। यह ध्वनि ही उसकी विशेषता है। इसी ध्वनि को रणन कहा जाता है।

समीक्षा-

1. इस सिद्धान्त में इतने दोष थे कि बाद में मैक्समूलर ने इसे छोड़ दिया।

2. इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि किस वस्तु से मस्तिष्क में कौन-सी ध्वनि झंकृत हुई।

3. यह सिद्धान्त शब्द और अर्थ में रहस्यात्मक स्वाभाविक सम्बन्ध मानता है। शब्द और अर्थ का साङ्केतिक सम्बन्ध है न कि स्वाभाविक यह मत अस्वीकृत होने पर भी रोचकता के लिए प्रचलित है।

4. ध्वन्यनुकरण-सिद्धान्त

- इस सिद्धान्त के अन्य नाम भी हैं, जैसे अनुकरण-सिद्धान्त, ध्वन्यात्मकानुकरण-सिद्धान्त, अनुकरणमूलकताबाद, शब्दानुकरणवाद, भों-भों-वाद आदि।

- कुत्ते की ध्वनि को अंग्रेजी में BOW-WOW कहते हैं, अतः हिन्दी में यह भों-भों-वाद हुआ।

- इस सिद्धान्त का अभिमत है कि प्राकृतिक वस्तुओं, पशु-पक्षियों आदि की ध्वनि के अनुकरण पर विभिन्न वस्तुओं के नाम रखे जाते हैं। जो वस्तु जैसी ध्वनि करती है, उसका वैसा ही नाम पड़ता है। जैसे-काँव-काँव से काक या कौआ, कू-कू से कोयल, झर-झर से झरना आदि।

समीक्षा-

1. विश्व की भाषाओं में ध्वन्यनुकरण वाले शब्दों की संख्या एक प्रतिशत भी नहीं है। अतः यह भाषोत्पत्ति सम्बन्धी उचित समाधान नहीं है।

2. प्रो० रेनन की आपत्ति है, यदि मनुष्य पक्षियों जैसे तुच्छ जीवों के शब्दों का अनुकरण करके भाषा बना सकता है, तो वह पशु-पक्षियों से निकृष्ट सिद्ध होता है।

3. कुछ भाषाओं में ध्वन्यनुकरण शब्द है ही नहीं। जैसे उत्तरी अमेरिका की 'अथवस्कन' भाषा। आंशिक रूप से स्वीकार्य होते हुए भी यह मत सम्पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं हैं।

भाषा-विज्ञान का सामान्य परिचय

भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन जिस शास्त्र में किया जाता है, उसे भाषा का विज्ञान कहते हैं।

अध्ययन के अनेक विषयों में से आजकल भाषा-विज्ञान को विशेष महत्व दिया जा रहा है। अपने वर्तमान स्वरूप में भाषा विज्ञान पश्चिमी विद्वानों के मस्तिष्क की देन कहा जाता है। अति प्राचीन काल से ही भाषा-सम्यन्धी अध्ययन की प्रवति संस्कृत साहित्य में पाई जाती है। शिक्षा नामक वेदांग में भाषा सम्बन्धी सूक्ष्म चर्चा उपलब्ध होती है। ध्वनियों के उच्चारण अवयव, स्थान, प्रयत्न आदि का इन ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।

प्रातिशाख्य एवं निरुक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति, धातु, उपसर्ग-प्रत्यय आदि विषयों पर वैज्ञानिक विश्लेषण भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है। भर्तहरि के ग्रन्थ वाक्यपदीय के अन्तर्गत 'शब्द' के स्वरूप का सूक्ष्म, गहन एवं व्यापक चिन्तन उपलब्ध होता है। प्रकारान्तर से वह एक भाषा-अध्ययन समबन्धी ही है।

संस्कृत साहित्य में दर्शन एवं साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी हमें 'शब्द' 'अर्थ रस भाव के सूक्ष्म विवेचन के अनार्गत भाषा वैज्ञानिक चर्चाओं के ही संकेत प्राप्त होते हैं संस्कृत साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होने वाली भाषा विचार-विषयक सामग्री ही निश्चित रूप से वर्तमान भाषा-विज्ञान की आधारशिला कही जा सकती है।

आधुनिक विषय के रूप में भाषा-विज्ञान का सूत्रपात यूरोप में सन 1786 ई० में सर विलियम जोन्स (Sir William Jones) नामक विद्वान द्वारा किया गया माना जाता है। संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रसंग में सर विलियम जोन्स ने ही सर्वप्रथम संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इस संभावना को व्यक्त किया था कि संभवतः इन तीनों भाषाओं के मूल में कोई एक भाषा रूप ही आधार बना हुआ है। अतः इन तीनों भाषाओं (संस्कृत, ग्रीक, और लैटिन) के बीच एक सूक्ष्म संबंध सूत्र अवश्य विद्यमान है। भाषाओं का इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन ही आधुनकि भाषा-विज्ञान के क्षेत्र का पहला कदम बना।

भाषा विज्ञान के अनेक नाम

भाषा-सम्बन्धी इस अध्ययन को यूरोप में आज तक अनेक नामों और संज्ञाओं से अभिहित किया जाता रहा है। सर्वप्रथम इस अध्ययन को फिलोलॉजी (Philology) शब्द के आगे विशेषण के रूप में एक शब्द जोड़ा गया (Comparative) तय इसे "कम्पेरेटिव फिलोलॉजी" (Comparative Philology) कह कर पुकारा गया। उन्नीसवीं शताब्दी तक व्याकरण तथा भाषा-विषयक अध्ययन को प्रायः एक ही समझा जाता था। अतः इसे विद्वानों ने "Comparative grammer (कन्पैरेटिय ग्रामर) नाम भी दिया। फ्रांस में इसको लैगिस्तीक् (Linguistique) नाम दिया गया। फ्रांस में भाषा सम्वन्धी कार्य अधिक होने के कारण उन्नीसवीं सदी में सम्पूर्ण यूरोप में ही "Linguistique" अथवा

"Linguistics" नाम ही प्रचलित रहा है। इसके अतिरिक्त "Science of Language" साइस ऑफ लैंग्वेज, "Glottology" "प्लौटीलेगी' आदि अन्य नाम भी इस विषय को प्रकट करने के लिए काम में आये। आज इन सभी नामों में से 'लिंग्विस्टिक्स Linguistics या "फिलोलॉज" (Philology) मात्र ही प्रयोग में लाए जाते हैं।

भारतवर्ष में इन सभी यूरोपीय नामों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में जी नाम प्रयोग में लाए जाते हैं वे इस प्रकार है- 'भाषा-शास्त्र, "भाषा-तत्व", "भाषा-विज्ञान', तथा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान" आदि। इन सभी नामों में से सर्व प्रबलित नाम 'भाषा-विज्ञान" है। इन नाम में प्राचीन और नवीन सभी नामों का समाहार-सा हुआ जान पड़ता है। अतः यही नाम इस शास्त्र के लिए सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

सामान्य परिचय

'भाषा-विज्ञान" नाम में दो पदों का प्रयोग हुआ है। 'भाषा" तथा "विज्ञान"।

भाषा-विज्ञान को समझने से पूर्व इन दोनों शब्दों से परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता है।

'भाषा' शब्द संस्कृत की भाष धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है-व्यक्त वाक् (व्यक्तायां याचि)।

'विज्ञान शब्द में वि उपसर्ग तथा ज्ञा' धातु से 'ल्युट् (अन) प्रायय लगाने पर बनता है। सामान्य रूप से 'भाषा' का अर्थ है 'बोल चाल की भाषा या बोली तथा 'विज्ञान का अर्थ है विशेष ज्ञान, किन्तु भाषा-विज्ञान' शब्द में प्रयुक्त इन दोनों पदों का स्पष्ट और व्यापक अर्थ समझ लेने पर ही हम इस नाम की सारगर्भिताको जानने में सफल

होंगे। अत हम वहीं इन दोनों पदों के विस्तत अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करते है।

भाषा:-मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अपने भावों और विचारों को एक दूसरे तक पहुंचाने की आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जाती रही है। इस प्रकार भाषा का अस्तित्त्व मानव समाज में अति प्राचीन सिद्ध होता है। मानव के सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का प्रकाशन करने के लिए, सभ्यता और संस्कृति के इतिहास को जानने के लिए भाषा एक महत्वपूर्ण साधन का कार्य करती है। हमारे पूर्वपुरुषों से सभी साधारण और असाधारण अनुभव हम भाषा के माध्यम से ही जान सके हैं। हमारे सभी सम्बन्धी और शास्त्रों से मिलने वाला ज्ञान भाषा पर ही निर्भर है। महाकवि दण्डी' ने अपने महान् ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में भाषा की महता सूचित करते हुए लिखा है-

"इदधतमः कृत्स्न जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।"

अर्थात यह सम्पूर्ण भुवनअंधकारपूर्ण हो जाता यदि संसार में शब्द-स्वरूप ज्योति अर्थात् भाषा का प्रकाश न होता।

स्पष्ट ही है कि यह कथन मानक भाषा को लक्ष्य करके ही कहा गया है। पशु-पक्षी भावों को प्रकट करने के लिए जिन ध्वनियों का आश्रय लेते हैं ये उनके भावों का वहन करने के कारण उनके लिए भाषा हो सकती है किन्तु मानव के लिए अस्पष्ट होने के कारण विद्वानों ने उसे अव्यक्त वाक् कहा है. जो भाषा-विज्ञान की दष्टि से कोई महत्त्व नहीं रखती। क्योंकि

अव्यक्त वाङ् में शब्द और अर्थ दोनों ही अस्पष्ट बने रहते हैं। मनुष्य भी कभी-कभी अपने भावों को प्रकट करने के लिए अंग-भंगिमा, भू-संचालन, हाथ-पाँव-मुखाकृति आदि के संकेतों का प्रयोग करते हैं परन्तु यह भाषा के रूप में होते हुए भी व्यक्त वाक्' नहीं है। मानक भाषा की सबसे बढ़ी विशेषता यह होती है कि वह व्यक्त वाक अर्थात शब्द और अर्थ की स्पष्टता लिए हुए होती है।